Vol. 4, Issue-2 (July 2015) pp. 19-29 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

नाट्यशास्त्र में वर्णित अंग प्रत्यंग अवनद्ध वाद्य एवं उनका वर्तमान स्वरुप

कविता मिश्रा
शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद
Email: kavitamishra2710@rediffmail.com

प्राचीन ग्रन्थों में भरत कृत नाट्यशास्त्र सबसे प्रमुख ग्रन्थ माना गया है । जिसका रचना काल तीसरी शताब्दी माना गया है । नाट्यशास्त्र के 37 अध्याय है जिसमें 28 से 33 संगीत से सम्बन्धित है। उस समय जो वाद्य प्रचलित थे उनका वैज्ञानिक ढ़ंग से अध्ययन किया गया है । महर्षि भरत ने 28 वें अध्याय का प्रारम्भ वाद्यों के वर्गीकरण से किया है। वाद्यों को चार भागो में विभाजित करते हुए उनके नाम, गुण, निर्माण विधि तथा वादन प्रकिया एवं वादन सामग्री का वर्णन किया है । अवनद्ध वाद्य को दो वर्गो में विभाजित किया है – अंग , प्रत्यंग । अंग – वे वाद्य जिनको किसी स्वर में मिलाया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत त्रिपुष्कर , पणव , दर्दुर। प्रत्यंग – वे वाद्य जिनको किसी स्वर में नहीं मिलाया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत झल्लरी , पटह।

नाट्यशास्त्र में जिन वाद्यों का वर्णन है वो लुप्त नहीं हुए है, वो आज भी लोक एवं शास्त्रीय रुप में विद्यमान है । त्रिपुष्कर के तीन भाग आंकिक जो कि उत्तर भारत में पखावज तथा दक्षिण भारत में मृंदग के रुप में जाना जाने लगा एवं उर्ध्वक, आंलिग्य जो कि तबले के रुप में विकसित हुआ। भरत कालीन पणव पूर्व मध्य काल में हुडुक, मध्य युग में आवज तथा आधुनिक युग में हुडुक या हुडुका कहा जाने लगा । दर्दुर वर्तमान में घट के समान है इसे दक्षिण भारत में घटम् कहा जाता है । झल्लरी को वर्तमान में खंजरी, चंग, दायरा के नाम से पुकारा जाता है । पटह को ढोल के नाम से जाना जाता है ।

इस प्रकार वर्तमान में जो भी वाद्य प्रचलित है उनका इतिहास देखा जाये तो वे सभी वाद्य कहीं न कहीं भरत कालीन वाद्य के समान प्रतीत होते है।

मुख्य शब्द –: उर्ध्वक , आंलिग्य , आंकिक , त्रिपुष्कर , झल्लरी

प्राचीन काल में संगीत विषयक सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भरत मुनि विरचित नाट्यशास्त्र है। इसकी रचना काल तीसरी शताब्दी के आस पास बताया गया है । नाट्यशास्त्र में 37 अध्याय है। जिसमें संगीत विषयक जानकारी 28वें अध्याय आतोद्य के लक्षण से प्रारम्भ होता है ।

ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च ।
यावन्ति तु विज्ञेयमातोघं लक्षणान्वितम् ।। 1 ।।[1]

अर्थात वीणा आदि तत, पीटे जाने वाले पुष्कर आदि अवनद्ध, कॉसी आदि धातुओं के बने हुए तालार्थ वाद्य घन तथा फूॅककर हवा भरते हुए बजने वाले सुषिर वाद्य कहलाते है ।4

यावन्ति चर्मद्धानि ह्मतोद्यानि द्विजोत्तमाः ।।
तती त्रिपुष्कराद्यानि ह्मवनद्धमिति स्मृतम् ।। 23 ।।

अर्थात त्रिपुष्कर जैसे चमड़े से मढ़े हुए जितने वाद्य होते उन्हें अवनद्ध शब्द से ग्रहण करना चाहिए ।

महर्षि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत मुख्य रुप से पुष्कर वाद्यों की संख्या 100 बतायी है किन्तु पुष्कर वाद्यों की अपेक्षा उनको निम्न कोटि में रखा है।[2]

भरत ने मृदंग, पणव, तथा दर्दुर को पुष्कर वाद्य कहा है। इन पुष्कर वाद्यों में मृदंग प्रमुख माना गया है । इन वाद्यों की उत्पत्ति महर्षि भारत ने एक कथा के रुप में दी है –

अनध्याये कदाचितु स्वातिमंहति दुर्दिने ।
जलाशयं यावत् प्रवृतः पाकशासनः ।। 4 ।।
तस्मिन् जलाशये यावत् प्रवृतः पाकशासनः ।
धाराभिर्महतीभिस्तु पूरयन्निव मेदिनीम् ।। 5 ।।
पतन्तीमिश्च धाराभिर्वायुवेगाज्जलाशये ।
पुष्करिण्यां पटुः शब्दः पत्राणामभवत्तदा ।। 6 ।।
तेषां धारोद्भवं नादं निशम्य स महामुनिः ।
आश्चर्यमिति मन्वानश्चावधारितवांन् स्वनम् ।। 7 ।।
ज्येष्मध्यकनिष्ठाना पत्राणामवधार्य च ।
गम्भीरमधुरं हघमजगामाश्रमं ततः ।। 8 ।।
ध्यात्वा सृष्टिं मृदंगड़ाना पुष्करानसृजत्ततः ।
पणवं दर्दुरं चैव सहितो विश्वकर्मणा ।। 9 ।।
देवानां दुन्दुभिं दृष्टवा चकार मुरजांस्ततः ।
आलिग्ड.यमूर्ध्वकं चैव तथैवाक्डि.कमेव च ।। 10 ।।[3]

इसका भावार्थ इस प्रकार है कि एक बार वर्षा ऋतु में अवकाश के समय स्वाति मुनि जल लेने के लिए तालाब पर गये । जब वे तालाब के पास पहुॅचे तो उस समय आकाश में बादल छाये थे और वर्षा हो रही थी । वायु वेग से जब जल की बूॅदों की धारायें तालाब में गिरती थीं कमल के पत्तों पर पानी की बूदें गिरने से पट–पट शब्द की मनोरंजक ध्वनि उत्पन्न होती थी , जिसे सुनकर स्वाति मुनि आश्चर्यचकित हो गये। बड़े, मध्यम व छोटे आकार के पत्तों से उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की गम्भीर व मधुर ध्वनियों को सुनकर अपने मन में धारण कर लिया और अपने आश्रम में पहुॅचने पर पुष्कर पर सुनी हुयी ध्वनियों का ध्यान करते हुए उनकी अनुकारमूलक ध्वनियों को उत्पन्न करने योग्य, मृदंग अर्थात पुष्कर वाद्यों को पणव तथा दर्दर सहित , विश्वकर्मा की सहायता से निर्माण किया; जोकि देवताओं की दन्दुभि को देखकर आलिंगक, उर्ध्वक और आंकिक इन तीन रूपों में मिट्टी से बनाये गये ।[4]

इसके बाद उन्होंने मृदंग, दर्दुर, और पणव वाद्य को चमड़े से मढ़कर उन्हें बद्धियों से कसने की बात भी कही है ।

चर्मणा चावनद्धांस्तु मृदंगड़.ान् दर्दूरं तथा ।
तन्त्रीभिः पणवं चैवमूहापोहविशारदः ।। 11 ।।[5]

अर्थात विचार तथा परीक्षण में दक्ष उन मुनि ने उन्होंने मृदंग, दर्दुर, और पणव वाद्य को चमड़े से मढ़कर उन्हें रस्सी या तंतुओं से बांध दिया ।

ये सभी अवनद्ध वाद्य लकड़ी से बनाये जाते थे और भीतर से पोले अर्थात खोखले होते थे, इनकी बनावट में विभिन्नता अवश्य थी परन्तु इन सभी वाद्यों के मुख में चमड़ा मढ़ा रहता था । जो

किसी न किसी प्रकार के आघात से बजते थे । इनमें से कुछ वाद्यों को निश्चित स्वर में मिलाया जाता था , जैसे मृदंग, पणव, दर्दुर । जो पुष्कर त्रय वाद्य माने गये है । इनको भरत ने अंग वाद्यों की श्रेणी में रखा तथा जिन अवनद्ध वाद्यों में स्वर मिलाने की व्यवस्था नहीं है, उन्हें महर्षि भरत ने प्रत्यंग वाद्य माना है । प्रत्यंग वाद्य में झल्लरी तथा पटह की गणना की है ।[6]

मृदंगा दर्दुराश्चैव् पणवेश्चग्ड्.संज्ञिताः ।
झल्लरीपटहदीनि प्रत्यड्.ानि तथैव च ।। 15 ।।[7]

अर्थात अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, दर्दुर, और पणव वाद्य को अंग तथा झल्लरी, पटह जैसे वाद्यों को प्रत्यंग कहते है ।

ऐसा लगता है कि प्रत्यंग वाद्यों का प्रयोग उत्तम संगीत के लिए नहीं किया जाता था। इन अवनद्ध वाद्यों में स्वर न होने के कारण इनमें दोनों बाते देखी जाती थी ।

1– इन वाद्यों में गम्भीरता भी पाई जाती थी ।
2– इनमें गम्भीरता नहीं भी होती थी ।[8]

वाद्यों का प्रयोग कब और कहॉ कहॉ किया जाता था इसके बारे में भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में विवेचन किया है –

उत्सवे चैव याने च नृपाणां मड्लेषु च ।
शुभकल्याणयोगे च विवाहकरणे तथा ।। 18 ।।[9]
उत्पाते सम्भ्रमे चैव सड्.ग्रामे पुत्रजन्मनि ।
ईदृशेषु हि कार्येषु सर्वातोद्यानि वादयेत् ।। 19 ।।[10]

अर्थात किसी उत्सव, राजकीय शोभा यात्रा, मंगल अवसर या किसी शुभ योग के उपस्थित होने पर, विवाह तथा पुत्रोत्सव के समय या युद्ध के अवसर पर जहॉ अनेक योद्धा इकट्ठे होते हों तथा इस तरह के किसी अन्य अवसर के आने पर सभी वाद्यों का वादन किया जाता है।

नाट्यशास्त्र में मुख्य तीन वाद्यों की चर्चा की गयी है। जिसे पुष्करत्रय कहा है। इसके अलावा पटह और झल्लरी का भी वर्णन नाट्यशास्त्र में आया है लेकिन गौण रुप में।

त्रिपुष्कर मृदंग

प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग, पणव तथा दर्दुर को पुष्कर वाद्य कहा है। इन वाद्यों में मृदंग को प्रमुख माना है, इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में महर्षि भरत ने स्वाति मुनि की कथा पर प्रकाश डाला है ।[11]

ऐतिहासिक दृष्टि से मृदंग, मुरज आदि का उल्लेख वैदिक वाग्ड.मय में प्राप्त नहीं है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि ग्रथों में मृदंग तथा मुरज के अलग अलग नाम उपलब्ध है। कालिदास साहित्य में भी मर्दल, मुरज तथा मृदंग इन तीनों का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है। महर्षि भरत ने मुरज को मृदंग का ही पर्याय माना है ।[12]

यद्यत् कुर्यान्मुरजे प्रहारजातं गतिप्रचारेषु ।
अनुगतमक्षरवृतं तदेव वाक्यं तु पणवेऽपि ।। 98 ।।[13]

अर्थात मुरज पर गति प्रचार तथा अन्य विविध कार्यों की स्थिति में अक्षरों का वादन किया जाता है उन सभी बोलों को पणव के वादन होने पर लागू किया जाये।

महर्षि भरत ने मृदंग को सभी अवनद्ध वाद्यों में श्रेष्ठ माना है । त्रिपुष्कर के रुप में जिन जिन वाद्यों का वर्णन किया है उससे इन तीनों प्रकारो , जो भरत ने बताये है – हरीतकी, यवाकृति,

गोपुच्छाकृति का वर्णन प्राप्त होता है। ये तीन वाद्य आंकिक हरीतकी के समान, उर्ध्वक यव के समान तथा आलिंग्य गोपुच्छा के समान रुप माना है –[14]

हरितक्याकृतिस्त्वक्ड़ी यवमध्यस्तथोर्ध्वगः ।
आलिग्डश्चैव गोपुच्छः आकृत्या सम्प्रकीर्तितः ।। 255 ।।[15]

अर्थात अंकी या आंकिक मृदंग हरण के समान, उर्ध्वक मृदंग जौ के समान और आंकिक मृदंग गोपुच्छ के आकार का होता है ।

आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्यक मृदंग के ही हिस्से थे इस बात के प्रमाण दिये है महर्षि भरत ने इसके साथ साथ करण, मार्जना विधि, हस्तपाट तथा पटाक्षरो के निकलने की विधि आदि का वर्णन भी किया है। [16]

नवे मृदंड्गे दातव्यं रोहणं सततं बुधैः ।
गव्यं घृतं च तैलं च तिलपिष्टं तथैव च ।। 272 ।।

अर्थात नवीन मृदंग पर गौ का घृत मिलाकर तिल के आटे का पिसा हुआ रोहण लगाना चाहिए ।

ब्राह्याणं शकरं विष्णु त्रिषु तेषु प्रकल्पयेत् ।
आलिग्ड्.गं स्थापयेत् पूर्व कृते ब्राह्मेऽय मण्डले ।
उर्ध्वकं तु द्वितीये ऽस्मिन् रुद्रनाम्नि निधापयेत् ।। 277 ।।[17]

अर्थात यह ब्रम्हा, विष्णु तथा शिव के तीन मंडलों का सुगन्धित गोमय के द्वारा निर्माण कर पूर्व दिशा में स्थित ब्रम्हा के मंडल पर आलिड़यक को द्वितीय राम के मण्डल पर उर्ध्वक को ओर विष्णु को तीसरे मण्डल पर तिरछा कर आंकिक मृंदग स्थापित करे ।

त्रिपुष्कर के तीन भागों में से दो भाग खड़े होते थे जिन्हें उर्ध्वक और आलिंग्य कहा और तीसरा भाग आकिंक जो कि लेटा हुआ वाद्य माना जाता था जो अंक में रखकर दोनों मुखों से बजाया जाता था।[18] नाट्यशास्त्र के अनुसार आंकिक हरीतकी के समान था जिसकी लम्बाई साढ़े तीन बलिश्त तथा मुख बारह अंगुल के व्यास का होता था । उर्ध्वक चार बलिश्त लम्बा तथा चौदह अंगुल व्यास के मुख होता था । मुदंग का आलिंग्य मात्र तीन बलिश्त लम्बा तथा आठ अंगुल व्यास के मुख वाला होता था ।[19]

इसमें एक विशेष प्रकार का चमड़ा मढ़ा जाता था । महर्षि ने इसके निम्न लक्षण बताये है –

अतःपर प्रवक्ष्यामि चर्मलणमुतमम् ।। 262 ।।
न ज्वरोपहतं चर्म न च काकमुखाहतम् ।
नापि दोषहतं क्लिन्नं न च धुमग्निदूक्तिम् ।। 263 ।।
ए षड्भिर्दोषैर्विनिमुक्तं चर्म निर्वर्त्यते गवातम् ।
अत्याभिषविहिन तु क्लिनं वा चर्म कर्मरिग ।। 264 ।।
विदित्वैव सुवरर्गानि चर्मण्याहत्य बुद्धिमान् ।
शीतोदके निशामेका स्थापयिवा समुद्धरत् ।। 265 ।।
वध्रैः सुललितैर्दात्रैर्गोमयैरक्तमार्जि मर्दि तैः ।
चन्द्रकैस्तनुभिः पश्चात्मृदंगान् योजयेद् बुधः ।। 266 ।।[20]

अर्थात चर्म न तो पुराना, न कटा हुआ या विदीर्ण, न कौए द्वारा पीटा हुआ ,न चरबी से सना हुआ और न आग या धुएँ से बिगड़ा, जलाया या काला होना चाहिए । गौ या बैल का ऐसा चर्म जिसमें पूर्व वर्णित छः दोष न हों और जिसे ठीक से कमाया गया हो, जिसका स्वरुप पुष्प के समान रंग वाला स्वच्छ दिखालाई देता हो, जो बर्फ या कुन्द पुष्प के समान सफेद रंग वाला हो, जो चमक लिए हो और जिसमें मॉस न लगा हो और ताजा या गिला हो तो ऐसा चमड़ा उत्तम रहता है। इसी प्रकार विधि वर्णित रोओं से युक्त चमड़े को ले कर उसे साफ गोबर से रगड़ कर साफ करें और फिर उसके गोल छोटे टुकड़े करके उन्हें मृदंग पर ठीक से प्रमाणपूर्वक बांध कर मढ़े दे ।

अवनद्ध वाद्य के वादन का समस्त विधान आचार्य भरत ने निम्न प्रकार बताये हैं –[21]

षोडशाक्षरसम्पन्नं चतुर्मार्ग तथैव च ।
विलेपनं षट्करणं त्रियति त्रिलयं तथा ।। 36 ।।
त्रिगतं त्रिप्रका(चा)रं च त्रिसंयोगं त्रिपाणिकम् ।
दशार्धपाणिप्रहतं प्रहारं त्रिमार्जनम् ।। 37 ।।
विशात्यलंक्डारयुक्तं तथाष्टादशाजातिकम् ।
एभिः प्रकारैः सम्पन्नं वाद्यं पुष्करजं भवेत् ।। 38 ।।[22]

अर्थात – पुष्कर वाद्यों में रहने वाले प्रकार ये है :– सोलह अक्षरों की ध्वनियॉ, चार मार्ग, विलेपन, छः कारण, तीन यतियॉ, तीन लय और तीन गत, तीन प्रचार, तीन योग, तीन पाणि, पंचपाणि प्रहत, तीन प्रहार, तीन मार्जनायें, अठारह जातियॉ और बीस अलंकार प्रकार। इन सभी स्वरूपों से युक्त पुष्कर वाद्य होते है ।

भरत मुनि ने पुष्कर वाद्यों में प्रयुक्त होने वाले 16 अक्षर निम्नलिखित बताये है –

कखतथभा(टढतथरा)स्तु दक्षिणमुखेत्र घघम(घम) हाश्च वामके नियता ।
गदाकारौचैवोर्ध्वे दठडोण(खठऽध) लाः स्युरालिङ्गे ।। 42 ।।[23]

अर्थात – क,ख,ग,घ,ट,ठ,ड,ढ,त,थ,द,ध,म,र,ल,ह। पुष्कर वाद्य के वादन में इनका सदा प्रयोग किया जाता है ।

आंकिक, उर्ध्वक, आलिंग्य के प्रयोगों की नाटयशास्त्र में चार विधियॉ बतायी गयी है जिन्हें – अङ्ति, आलिप्त, वितस्त तथा गोमुख कहा जाता है।[24]

महर्षि भारत ने तीन प्रकार की मार्जना बतायी है। मार्जना की प्रक्रिया विशेषतः त्रिपुष्कर वाद्य के सम्बन्ध में निर्दिष्ट है, जहॉ विभिन्न मुखों पर मृत्तिका लेप द्वारा विभिन्न स्वरों की स्थापना की जाती है।[25]

मायूरी ह्यर्धमायुरी तथा कार्मारवीति च ।
तिस्रस्तु मार्जना ज्ञेयाः पुष्करेषु स्वराश्रयाः ।। 102 ।।[26]

अर्थात – त्रिमार्जना के नाम इस प्रकार हैं – मायूरी, अर्धमायूरी तथा कर्मारवी और ये तीनों मार्जनाएँ पुष्कर वाद्यों के स्वरों से सम्बद्ध रहती है ऐसा समझना चाहिए ।

मार्जना का नाम	वाम पुष्कर	दक्षिण पुष्कर	उर्ध्वक पुष्कर
मायूरी	गन्धार	षड्ज	मध्यम
अर्धमायूरी	षड्ज	ऋषभ	धैवत
कार्मारवी	ऋषभ	षड्ज	पंचम

त्रिपुष्कर के तीनों भागों को उर्ध्वक, आलिंग्य और अंकिक कहा जाता था । सातवीं शताब्दी के बाद शनै शनै त्रिपुष्कर की आकृति में परिवर्तन होता गया और बारहवी शताब्दी तक अर्थात् शारंगदेव के समय तक वह पूरी तरह परिवर्तित हो गया। संगीत रत्नाकर के समय मृदंग नाम मर्दल प्रसिद्ध हो चुका था। केवल आंकिक को ही सम्पूर्ण मृदंग अथवा मर्दल और मूरज का रुप माना था ।[27] अतः आजकल हम जिस वाद्य को उत्तर भारत में मृदंग या पखावज कहते है तथा दक्षिण में मृदंगम् के नाम से सम्बोधित करते है वह भरतकालीन मृदंग का एक ही भाग आंकिक है।[28]

भारत के आधुनिक ताल वाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास में भी हमें भरतकालीन त्रिपुष्कर के तीनों हिस्से प्रमुख रूप से देखने को मिलते है। जैसे ढोलक, पखावज, खोल आदि के विकास में आंकिक का महत्व दिखायी देता है तो तबले बॉये पर ऊर्ध्वक और आलिंग्य का प्रभाव । आधुनिक तबले– बायें का आविष्कार एवं परिष्कार इन प्राचीन त्रिपुष्कर के खड़े भागों पर आधारित हो यह भी संभावित हो सकता है ।[29]

पणव

पणव भी भारत का अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते है जिससे पता चलता है कि यह वैदिक कालीन वाद्य समझा जा सकता है।[30] महर्षि भरत ने मृदंग के बाद अवनद्ध वाद्यों में पणव को ही महत्वपूर्ण वाद्य बताया गया है।[31] प्राचीन संस्कृत साहित्य में पणव का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में हुआ है। बाल्मिकी रामायण के सुन्दरकाण्ड 11–43 और युद्धकाण्ड 44–92 उसी प्रकार महाभारत के अरण्यपर्व 132/19 तथा अघोतपर्व 7/16 में पणव वाद्य का कई स्थानों पर उल्लेख है। इस प्रकार पणव की प्राचीनता मृदंग के समान सिद्ध होती है ।

महर्षि भरत ने नाट्यशास्त्र में पणव की रचना की विवेचना इस प्रकार की है –

पणवश्चापि कर्तव्यो दीर्धत्वे षोडषाग्ड्.लः ।
कृशमध्याऽगुलान्यष्टौ पंचाग्डुलमुखस्तथा ।। 259 ।।
ओष्ठं वस्य च कर्तव्यं तज्ज्ञैरध्यर्धमगुलम् ।
मध्यं च सुषिरं तस्य चत्वार्थेवाड्.गुलानि च ।। 260 ।।[32]

अर्थात – पणव की लम्बाई सोलह अंगुल रखी जाये, इसका मध्य भाग आठ अंगुल पतला और मुँह पॉच अंगुल प्रमाण का होता है । इसके ओठ या किनारों की मोटाई आधे अंगुल की रखी जाये इसके मध्य भाग में छिद्र रखे जाये और चार अंगुलियों के बराबर इसका प्रमाण रख जाये।[33]

पणव के दोनों मुख कोमल चर्म से मढ़े जाते थे, जिन्हें सुतली से कस दिया जाता था। सुतलियों का यह कसाव कुछ ढीला रखा जाता था जिसे वादन के समय बॉये हाथ से मध्य भाग को दबाकर तथा ढीला कर आवश्कतानुसार उॅची– नीची ध्वनि निकाली जाती थी।

महर्षि भरत के अनुसार पणव से निम्नलिखित अक्षर निकालते थे –: क,ख,ग,ट,ण,दे,वा,हण, र ला, कु, लि,लं,घ णे, कि, रि, कि, हण ।

बॉये हाथ से पणव सुतलियों को कसते हुए तथा ढीला करते हुए दाहिने हाथ की कनिष्का तथा अनामिका के द्वारा विभिन्न करणों का वादन किया जाता था। अन्य विशेष बोलों के लिए अन्य उंगलियों का प्रयोग भी होता था । वादन में कनिष्का तथा अनामिका का विशेष प्रयोग होता था। कसते हुए पणव में मुख्य रुप से ख,ख,न,न, आदि बोल थे और सुतलियों को ढीला करने पर ल,धा आदि बोल निकालते थे ।[34]

महाकवि कालिदास ने भी अपने पदों में पणव का उल्लेख किया है बाजत–पवन "निसान पंच विध संज, मुरज सहनाई"।[35]

इस प्रकार अगर ध्यान से देखा जाये तो प्राचीन कालीन पणव, पूर्व मध्यकाल हुडुक, मध्ययुग में आवज तथा आधुनिक युग में पुनः हुडुक कहा जाने लगा। इस नाम परिवर्तन के साथ साथ उसके आकार को छोटा अवश्य किया गया है किन्तु उसकी बनावट, पकड़ तथा वादन क्रिया वैसी ही बनी रही।[36]

दर्दुर

महर्षि भरत ने दर्दुर वाद्यों को अवनद्ध वाद्यों में अंग वाद्य माना इसे पर्याप्त महत्व दिया । जबकि पूर्ववर्ती आचार्यो ने इस वाद्य की महत्ता स्वीकार नहीं की थी ।[37] महर्षि भरत ने इस वाद्य को घट के आकार का बताया है। घट का आकार इस प्रकार बताया है –

दर्दरश्च घटाकारो नवाङ्.गुलमुखस्तथा ।
विधानं चास्य च कर्तव्यं घटस्य सदृशं बुधैः ।। 261 ।।
द्वादशाङ्.गुलविस्तीर्णे पीनोष्ठस्य समासतः ।[38]

अर्थात – यह घट के आकार का होता था, जिसका प्रमाण 16 अंगुल का होता था, जिसके उपर चमड़े की पूड़ी का विस्तार 12 अंगुल का होता था । इसके कोने या किनारे चारों ओर से मोटे बनाए जाये।[39]

यह चमड़े की पूड़ी सुतलियों से पणव के समान ही कसी रहती थी। दर्दुर वाद्य में निकलने वाले पाटाक्षर – द,य,स,क,ह,ल,म,ट,त,थ,न तथा दड़ स्येग्ड, दे कहुला मटत्थि , देंग,नेग आदि है । इन बोलो के वादन हेतु दोनों हाथों का प्रयोग किया जाता था । दाहिने हाथ का प्रयोग जहॉ मुक्त, अर्धमुक्त तथा बन्द ध्वनियों के लिए किया जाता था, वही बॉये हाथ का प्रयोग दाहिने हाथ के सहायक के रुप में किया जाता था ।

महर्षि भरत के पश्चात् इस वाद्य का महत्व कम को गया किन्तु इसका लोप नहीं हुआ। संगीत रत्नाकर में इसी दर्दुर वाद्य को घट कहा गया तथा उसमें परिवर्तन यह हुआ कि घट के उपर जो चमड़ा मढ़ा जाता था वह बन्द हो गया और इस प्रकार धीरे धीरे घट के स्वरुप में परिवर्तन आया इसके दो रुप सामने आये एक के मुख में चमड़ा मढ़ा होता है और दुसरे के मुख में नहीं अर्थात खाली जो आधुनिक युग के घट के समान ही है। दक्षिण भारत में इसे घट्म कहा जाता है ।[40]

झल्लरी

नाटयशास्त्र में झल्लरी का उल्लेख प्रत्यंग वाद्य की श्रेणी में किया है –

झल्लरीपटहादीनी प्रत्यंङ्.ानि तथैव च ।

झल्लरी ऐसा वाद्य है जिसमें स्वर नहीं मिलाया जाता था। संगीत रत्नाकर में झल्लरी को अवनद्ध वाद्यों के अर्न्तगत माना गया है। संगीत रत्नाकर के काल में झल्लरी के साथ साथ उसका एक छोटा रुप भी प्रचलित था जिसे भाण कहते थे । इस झल्लरी तथा भाण को संगीत परिजात में चक्रवाद्य अथवा करचक्र से सम्बोधित किया गया है और आजकल इन्हीं को खंजरी, दायरा, चंग आदि के नाम से पुकारा जाता है। संगीत सार के अनुसार यह चमड़े से मढ़ा वाद्य है।[41]
संगीत रत्नाकर में झल्लरी का वर्णन इस प्रकार दिया है –

पलैःस्यात् पंचविशत्या दैर्ध्य तु द्वादशाङ्.गुला ।। 1138 ।।
अष्टादशाङ्गुलमिता परिधौ समविग्रहा ।
ससूतत्रकटकं रन्ध्रद्वयं कण्ठे च विभ्रती ।। 1139 ।।
चर्मणाऽऽनद्धवदना झल्लरी परीकीर्तिता ।।
वामहस्तधृता सा च वाद्या दक्षिणपाणिना ।। 1140 ।।[42]

अर्थात – पच्चीस पलों के (वजन) से लम्बाई में तो 12 अंगुल वाली होती है । घेर में 18 अंगुल से नापी हुई समान शरीर वाली, डोरी के कड़े सहित और गले में छेदों का जोड़ा धारण करती हुई, चमड़े से बंधे हुए मुंह वाली झल्लरी कही गयी है और वह बायें हाथ में पकड़ी हुई दाहिने हाथ से बजानी चाहिए ।

इतना ही वर्णन संगीत रत्नाकर में बताया गया है। इसके स्वर स्थापना एवं वादन विधि का उल्लेख न होने से यह अवनद्ध वाद्य शास्त्रीय संगीत के लिए अनुपयोगी रहा होगा ।[43]

पटह

पटह भरत के प्राचीनतम वाद्यों में से एक है। वाल्मीकि कृत रामायण, पौराणिक ग्रंथो जिसमें महाभारत भी शामिल है, मानसोल्लास, भरतभाष्यम तथा संगीतोपनिषत्सारोद्वार आदि ग्रंथो में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र में इसे प्रत्यंग की श्रेणी में रखा गया है व संगीतरत्नाकर में भी इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह अत्यंत प्राचीन वाद्य है ।[44]

मृदंग के बाद पटह का ही सर्वाधिक वर्णन रहा। पटह की लोकप्रियता का कारण यह है कि इसकी उपादेयता द्विविध है । यह लोकसंगीत तथा शास्त्रीय संगीत दोनों के लिए उपयोगी है। जबकि मृदंग मर्दल आदि का प्रयोग शास्त्रीय संगीत के लिए ही श्रेयस्कर कहा गया है।

संगीत परिजात के अनुसार पटह ढोलक समान वर्णित किया। संगीत सार में भी ढोलक को पटह का पर्याय कहा गया है ।[45]

वाल्मीकि रामायण में पटह सम्बन्धी उल्लेख आया है –

पटह चारुसर्वाडी न्यस्य शेते शुभस्तनी ।[46]

हिन्दी शब्द सागर में पटह का अर्थ नगाड़ा तथा दुन्दुभी बताया गया है किन्तु पटह नगाड़ा और दुन्दुभी दोनों ही नहीं है।[47] पटह को भानुजी दीक्षित ने अमरकोश की टीका में दो प्रकार से व्युत्पत्ति दी है।

पटेन हन्यते इति पटहः ।

अर्थात जिसका पट से हनन किया जाये अर्थात जो पट से बजाया जाये वह पटह है।
1– यहॉ पर पट का अर्थ वृक्ष के डंडे के दो रुप में किया गया है।[48]
2– दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार –

पट इति शब्दम् जहाति इति पटहः।

अर्थात जो पट – पट शब्द करे वह पटह है। यही व्युत्पत्ति अधिक उपर्युक्त है।[49]

पटह वाद्य के दो रुप – देशी तथा मार्गी होते हैं।

1– मार्गी पटह – इसकी लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ से ढाई हाथ तक की होती है । यह वाद्य दो मुखी तथा इसका अंग लकड़ी का बना होता है । मध्य भाग उठा हुआ तथा अन्दर से खोखला होता है। इसके दाहिने मुख का व्यास लगभग साढ़े ग्यारह अंगुल तथा बायें मुख का व्यास लगभग साढ़े दस अंगुल तक का होता है। दाहिने तथा बॉये मुख पर लोहे अथवा काठ के कड़े पहना कर उन्हें चमड़े से लपेट दिया जाता है। दोनों दॉये तथा बायें मुखों के कड़ो में 7–7 छेद कर रेशम की डोरी द्वारा दोनों मुखों के चमड़े को कसा व ढीला किये जाने पर स्वरों को उँचा व नीचा किया जा सकता है।[50]

2– देशी पटह – इसकी संरचना भी लगभग मार्गी पटह की तरह ही होती थी। पटह के लिए खैर की लकड़ी को उपयुक्त माना गया है। इसकी लम्बाई डेढ हाथ, दॉये मुख का व्यास सात अंगुल, बॉये मुख का व्यास साढ़े छः अगुल का रहता था। देशी पटह के बॉए मुख को जिस चमड़े से मढ़ा जाता था उसे उद्यली कहा जाता था। उद्यली का तात्पर्य पशु के जठर में जो चमड़ा रहता है उसे बजाने से ध्वनि उत्पन्न होती थी।[51]

इसको लगभग एक हाथ की मुड़ी हुयी डण्डी से भी बजाया जाता है । सामान्यतया पद्यासन में बैठ कर दोनो जघों पर पटह रखकर बजाया जाता है।[52] जबकि नाटको में घट वाद्य की तरह बजाया जाता था।[53] मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर , संगीत सार आदि ग्रंथो में पटह के जिन वर्णो का तथा उनके वादन क्रिया का जो वर्णन किया गया है वह पटह के साथ साथ मृदंग, मर्दल, हुडुक्का आदि से भी सम्बन्धित है। प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्य में बजने वाले बोलों को पाट कहा जाता था। अतएव जहॉ जहॉ पाट अथवा पाटाक्षर का प्रयोग हो वहॉ उस वाद्य के बोल समझना चाहिए। पटह वाद्य से जिन सोलह वर्णो का प्रायोग हो वहॉ उस वाद्य का बोल समझना चाहिए।[54] पटह वाद्य से जिन सोलह वर्णो का प्रयोग किया जाता है वे इस प्रकार है –

क,ख,ग,घ,ट,ठ,ड,ढ,ण,त,थ,द,ध,न,र और ह

इन उपर्युक्त वर्णो के संयोग द्वारा जिन संयुक्त बोलो का वादन पटह में किया जाता है वह निम्न है किण,खिण,जिण,घण,टण, यण, ढण, हण आदि। इस प्रकार सोलह वर्णो के संयोग द्वारा यद्यपि उपर्युक्त विभिन्न संयुक्त बोलो का वादन पटह में किया जाता है। [55]

1 नागबन्धन – जो संधोजात मुख से उत्पन्न हुआ ।
2 स्वस्तिक – जो वामदेव से उत्पन्न हुआ ।
3 अलग्न – जो अधोश मुख से उत्पन्न हुआ ।
4 शुद्धि – जो तत्पुरुष से उत्पन्न हुआ ।
5 समस्खलित – जो ईशान मुख से उत्पन्न हुआ ।

उपर्युक्त पॉच प्रमुख पाटो के देवता इस प्रकार है –

1 नागबन्धन – ब्रम्हा ।
2 स्वस्तिक – विष्णु ।
3 अलग्न – शिव ।
4 शुद्धि – सूर्य ।
5 समस्खलित – चन्द्र ।

शास्त्रों में इस वाद्य के वादन पद्धति से सम्बन्धित 21 हस्तपाटों का उल्लेख किया गया है[54] तथा अष्टावपाठहस्तक वादन क्रिया से सम्बन्धित है जिनके नाम इस प्रकार है –(1)तलप्रहार, (2)प्रहर, (3)वलित, (4)गुरुगुंजित, (5)अर्धसंच प्रपंच , (6)त्रिसंच, (7)विषमहस्तक, (8)अभ्यस्तक आदि।[56]

शास्त्रों में पाट विन्यास के जिन 12 भेदो का वर्णन किया गया है वह इस प्रकार है –

(1)वोल्लावणी, (2)चल्लावणी, (3)उडुक, (4)कुचुम्बिणी, (5)चरुस्त्रवणिका, (6)अलग्न, (7)परिवस्त्रवाणिका, (8)समप्रहार, (9)कुडुपवारणा, (10)करवारणा, (11)दण्डहस्त, (12)धनख [57]

निष्कर्ष –: इस प्रकार हम कह सकते है नाट्यशास्त्र में वर्णित वाद्य आज भी प्रचलित है चाहे वह लोक वाद्य के रुप में हो या शास्त्रीय वाद्य के रुप में लेकिन उनके नाम में अन्तर देखने को मिलता है। त्रिपुष्कर के तीन हिस्से आंकिक जो कि मृदंग के रुप में विकसित हुआ, उर्ध्वक एवं आलिंग्य का प्रभाव तबले और बॉए पर पड़ा। प्राचीन पणव आधुनिक युग में हुडुक या हुडुक्का के नाम से जाना जाने लगा। दर्दुर को आधुनिक युग में घट के समान माना गया है। झल्लरी को खंजरी या चंग के नाम से जाना जाने लगा है । पटह को ढोलक के नाम से जाना जाने लगा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –:

1– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 13
2– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 35
3– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 396
4– शुक्ल, योगमाया – तबले का उद्‌गम विकास और वादन शैलियॉ – हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय, डी0यू0, पृ0. 80
5– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 397
6– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 35
7– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 398
8– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 36
9– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 398
10– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 399
11– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 38 – 39
12– मिस्त्र, अबान ए – पखावज और तबला के घराने परम्पराये – स्वर साधना समिति, पृ0.22
13– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 417
14– मराठे, मनोहर भालचन्द्र –ताल वाद्य शास्त्र – शर्मा पुस्तक सदन, पृ0. 78
15– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 444
16– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 40
17– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0.446– 447
18– मिस्त्र, अबान ए – पखावज और तबला के घराने परम्पराये – स्वर साधना समिति, पृ0.23
19– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 40
20– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 445
21– कुदेशिया, शोभा – प्राचीन ताल के परिपेक्ष्य में वर्तमान तबला वादन – राधा पब्लिशिंग , नई दिल्ली, पृ0. 178
22– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 204
23– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 406
24– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 41
25– मुसलगॉवकर, विमला – भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन – संगीत रिसर्च अकादमी , कलकत्ता, पृ0. 382
26 मिस्त्र, अबान ए – पखावज और तबला के घराने परम्पराये – स्वर साधना समिति, पृ0. 23
27– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 42
28– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 17

29– मिस्त्र, अबान ए – पखावज और तबला के घराने परम्पराये – स्वर साधना समिति, पृ0.23
30– मराठे, मनोहर भालचन्द्र –ताल वाद्य शास्त्र – शर्मा पुस्तक सदन, पृ0. 80
31– कुदेशिया, शोभा – प्राचीन ताल के परिपेक्ष्य में वर्तमान तबला वादन – राधा पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृ0. 179
32– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0 444–445
33– शुक्ल, बाबुलाल शास्त्री – श्री भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र – चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, पृ0 434– 435
34– पटेल, जमुना प्रसाद – ताल वाद्य परिचय – प्रिया कम्प्यूटर्स , खैरागढ, पृ0. 37
35– कुदेशिया, शोभा – प्राचीन ताल के परिपेक्ष्य में वर्तमान तबला वादन – राधा पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृ0 179
36– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 173
37– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 164
38– भरत मुनि कृत नाट्यशास्त्र – परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 445
39– शुक्ल, बाबुलाल शास्त्री – श्री भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र – चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, पृ0. 435
40– मराठे, मनोहर भालचन्द्र –ताल वाद्य शास्त्र – शर्मा पुस्तक सदन, पृ0. 82
41– श्रीवास्तव, गिरीशचन्द्र – ताल कोश, पृ0. 85
42– चौधरी, सुभद्रा – शारंगदेवकृत संगीतरत्नाकर तृतीय खण्ड – चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, पृ0. 532
43– मिश्र, लालमणि –भारतीय संगीत वाद्य – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 151 – 15
44– मराठे, मनोहर भालचन्द्र – ताल वाद्य शास्त्र – शर्मा पुस्तक सदन, प0. 83
45– मराठे, मनोहर भालचन्द्र – ताल वाद्य शास्त्र – शर्मा पुस्तक सदन, प0. 83
46– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 173
47– शिरोमणि, तिलक – बाल्मीकि मुनिप्रणीत रामायणम् – परिमल परिमल पब्लिकेशन , दिल्ली, पृ0. 1764
48– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 172 – 173
49– सिंह, डॉ ठाकुर जयदेव – भारतीय संगीत का इतिहास – विश्वविघालय प्रकाशन , वाराणसी, पृ0. 178
50– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 174
51– पागलदास, रमाशंकर – तबला कमौदी – पृ0. 20
52– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 174
53– भार्गव, अंजना – भारतीय संगीत में वाद्यों का चिंतन – पृ0. 175
54– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 175
55– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 177 –178
56– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 179
57– मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत शास्त्र – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0. 181